दिव्यालोक

अंक 13, वर्ष

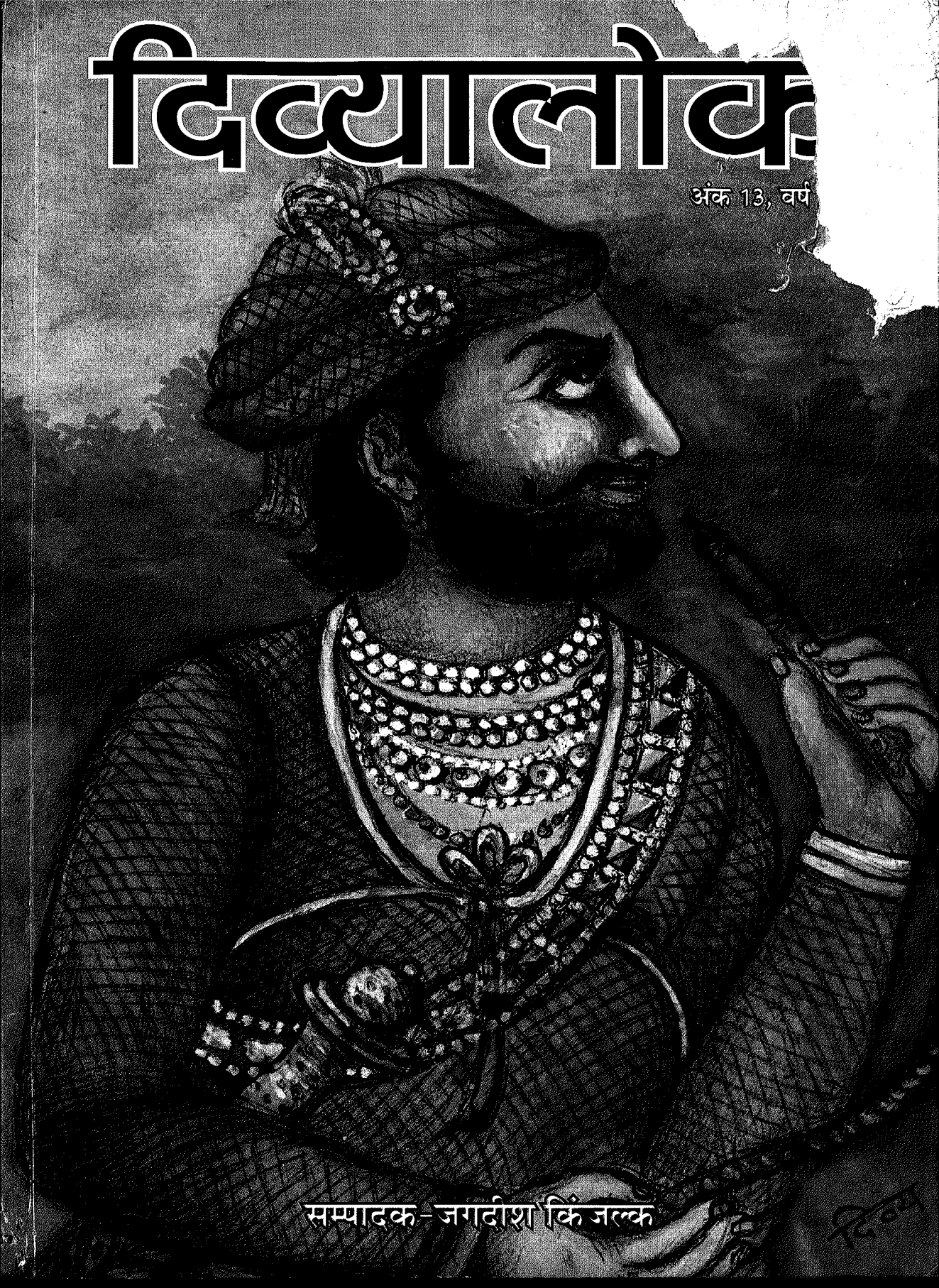

सम्पादक - जगदीश किंजल्क

अखिल भारतीय अम्बिकाप्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार समिति, भोपाल का अर्द्ध वार्षिक साहित्यिक दस्तावेज़

दिव्यालोक

अंक-तेरह, वर्ष-2010

परामर्श : पद्मश्री ओ.एन. श्रीवास्तव, श्री मोती सिंह, डॉ. पुखराज मारू, श्री विजय वाते, श्री शिवशेखर शुक्ला, श्री अजीत चौधरी, डॉ. त्रिलोक महावर, श्री शशि मलिक, डॉ. अधीर कुमार बार, श्री के.बी. शर्मा, श्री संतोष खरे, श्री गंभीर सिंह पालनी, श्री नरेन्द्र दीपक, डॉ. जवाहर कर्नावट, श्री आर.सी. घिया, श्री सुरेश नागर, डॉ. राधा-वल्लभ त्रिपाठी, श्रीमती कमल चंद्रा, प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी, श्री अंशलाल पंद्रे, डॉ. स्वाति चांदोरकर, श्री प्रियदर्शी खैरा, श्री आदित्य ओम।

संपादक
जगदीश किंजल्क

उप संपादक
विजयलक्ष्मी 'विभा'

प्रकाशक
राजो किंजल्क
साहित्य सदन, प्लाट नं. 145-ए, साँईनाथ नगर 'सी' सेक्टर, कोलार,
भोपाल-462042 (म.प्र.)
मो. : 09977782777 दूर. : 0755-2494777

सभी पद अवैतनिक, अव्यवसायिक
आवरण चित्र : **राजा अमान सिंह**
चित्रकार–अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य'
(बुंदेलखण्ड चित्रावली से)
मूल्य : **साठ रुपये मात्र**
सर्वाधिकार : **प्रकाशक के अधीन**

कम्पोजिटर एवं डिजाईनर : **संजय तिवारी**
सरोज कम्प्यूटर्स,
ई.एल.सी. कैम्पस, विश्वविद्यालय रोड,
सागर-462 003 (म.प्र.)
दूर.व मोबा. : (07582) 264674, 9827232708

अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य'

जन्म	:	16 मार्च 1907
अवसान	:	05 सितम्बर 1986
पिता का नाम	:	स्व. गुलजारीलाल वर्मा
जन्मस्थान	:	अजयगढ़ पन्ना (म.प्र.)
भाषाज्ञान	:	हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, रूसी

विशेष : 'बुंदेलखण्ड के गौरव' नाम से विख्यात श्री अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' की गणना देश के शीर्ष ऐतिहासिक उपन्यासकार, कवि एवं चित्रकार के रूप में की जाती है। साहित्य की सभी विधाओं में दिव्य जी ने साठ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। वे सफल चित्रकार, अन्वेषी और शिक्षाविद् भी थे। अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से गौरवान्वित दिव्य जी लोकप्रिय समाजसेवी तथा क्रांतिकारी भी थे। दिव्य जी द्वारा रचित उपन्यास 'खजुराहो की अतिरूपा' का अंग्रेजी अनुवाद 'द पिक्चरस्क खजुराहो' ने आपको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाई है। दिव्य जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अभी तक पाँच शोध प्रबंध लिखे गये हैं। कई शोधकार्य अभी चल रहे हैं। दिव्य जी के कृतित्व पर दूरदर्शन भोपाल ने एक फीचर फिल्म का भी निर्माण किया है। दिव्य जी की स्मृति में विगत तेरह वर्षों से साहित्य सदन, भोपाल द्वारा अनेक साहित्यिक पुरस्कार प्रदान किये जा रहे हैं, जो राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित एवं अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

उपन्यास : निमियाँ, मनोवेदना, बेलकली, खजुराहो की अतिरूपा, जयदुर्ग का रंगमहल, पीताद्रि की राजकुमारी, प्रेम तपस्वी ईसुरी, जोगी-राजा, सती का पत्थर, फ़ज़ल का मकबरा, जूठी पातर, काला भौंरा और असीम की सीमा।

काव्य : गांधी पारायण, अन्तर्जगत्, रामदर्पण, खजुराहो की नारी, दिव्य-दोहावली, पावस, पिपासा, स्रोतस्विनी, पश्यन्ती, चेतयन्ती, अनन्य मानसा, बेत्सिमामू, विचिन्तयन्ति, भारतगीत आदि।

नाटक : लंकेश्वर, भोजनंदन कंस, निर्वाण पथ, तीन पग, कामधेनु, सूत्रपात, चरणचिन्ह, प्रलय का बीज, रूपक सरिता, रूपक मंजरी, भारतमाता, फूटी आँखें।

निबंध : दीपक सरिता, निबंध विविधा, हमारी चित्रकला, लोकोक्तिसागर।

इतिहास : बुंदेलखण्ड चित्रावली, खजुराहो चित्रावली।

अंग्रेजी ग्रंथ :
- The Picturesque Khajuraho : History of Erotic-Sculptures.
- The Women of Khajuraho.

अनुक्रमणिका

				पृष्ठ क्रमांक
	ादक की कलम से	—	जगदीश किंजल्क	3
	मत्कारी संत द्वारकादास....	—	अम्बिकाप्रसाद दिव्य	7
	हिन्दी में रामकाव्य की परम्परा और साकेत	—	नृपेन्द्रनाथ गुप्त	9
	इक्कीसवीं शती की हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना	—	डॉ. सुंदरलाल कथूरिया	12
	नवलेखन के विकास में साहित्यिक पत्रिकाओं का अवदान	—	डॉ. कीर्ति शर्मा	15
5.	स्त्री स्वातंत्र्य और दलित स्त्री	—	डॉ. सुमित्रा महरोल	17
6.	भीतरी समृद्धि	—	डॉ. चंद्रकांत मेहता	19
7.	बिना सहारे जीना नहीं	—	अंजुदुआ जैमिनी	21

कविताएँ/गीत 24-27

1. डॉ. बलदेव वंशी 2. भोलानाथ कुशवाहा 3. डॉ. मधु संधु
4. नरेन्द्र दीपक 5. अरुणा राय 6. निर्मलचंद्र 'निर्मल'
7. राधा जनार्दन 8. शैलेय

कहानियाँ

1. जनकपुर का अवसान — शुभद्रा मिश्र 28
2. पुनर्नवा — मृदुला सिन्हा 36
3. बहते पानी का झरना — मनोज सिंह 41

गीत/दोहे 45-47

1. भगवतीप्रसाद द्विवेदी, 2. नलिनी पुरोहित, 3. विजयलक्ष्मी विभा,
4. शंकर सक्सेना, 5. मोहनचंद्र त्रिपाठी 'मोहन' 6. जय चक्रवर्ती

व्यंग्य

1. ठाढ़े रहियो ओ बांके यार रे — डॉ. नताशा अरोड़ा 48
2. मीडिया फ्लू — सुदर्शन सोनी 50

ग़ज़लें 52-54

1. रौशनलाल रौशन, 2. बशर नवाज/प्रशांत रामचंद गुल्हान, 3. दिवाकर दिनेश गौड़
4. ओम रायजादा, 5. गिरिमोहन गुरु, 6. शशि जोशी,
7. प्रियदर्शी खैरा

बालगीत 55

1. विजयलक्ष्मी 'विभा' के चंद बालगीत

लघुकथाएँ

1. अंजुदुआ जैमिनी 11

पुस्तक समीक्षाएँ **56**

1. डॉ. सतीश दुबे 2. मुकेश कुमार पाण्डेय, 3. बैकुंठनाथ
4. महेश परिमल 5. स्वाति तिवारी 6. प्रभुदयाल मिश्र
7. संतोष खरे 8. शाकिर अली 9. विजयलक्ष्मी विभा

स्तम्भ

1. पाठकों की प्रतिक्रियाएँ 68
2. सहयोगी पत्रिकाएँ 73
3. चौदहवें दिव्य पुरस्कारों की विज्ञप्ति 76

स्त्री विमर्श

स्त्री स्वातंत्र्य और दलित स्त्री

सुमित्रा महरोल

स्त्री समाज की मूलभूत ईकाई है, पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री विशेषकर दलित स्त्री जाति व पितृसत्तारूपी दोहरे अभिशापों के तीखे दंशों को झेलने के लिए अभिशप्त है। भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री होने के साथ दलित होना स्त्री के संतापों को कई गुना बढ़ा देता है। भारत का समाज, जाति व धर्म पर आधारित है, पितृसत्तात्मक भी है। पितृसत्ता ने सारे नियम अपनी सुविधा के अनुसार बनाए है। दलित स्त्रियाँ, जाति और पितृसत्ता दोनों का उत्पीड़न झेलती हैं। घर के बाहर और दलित उन्हें लहुलुहान करते हैं तो घर के अंदर दलित पुरुषों की सामंती मनोवृत्ति, वर्चस्ववाद व शारीरिक हिंसा उन्हें तोड़ती है।

इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता जी का विचार है–"स्त्री की असमानता का मूल मंत्र धर्म है। धर्म और जाति से पितृसत्ता का रिश्ता चोली दामन का रहा है। परम्परा, संस्कार और सामाजिक राजनैतिक व्यवहार धर्म और जाति की देन है तो विशुद्ध पितृसत्ता के पोषण के औजार भी हैं। पितृसत्ता ने स्त्री के लिए जहाँ एक तरफ सारे पारिवारिक सामाजिक, सांस्कृतिक मानदंड धर्म और जाति की आड़ में ही तय किए हैं। जो यथास्थिति के समर्थक हैं तो दूसरी ओर उसने परिवार के रूप में एक ऐसा ढाँचा तैयार कर दिया जो पितृसत्ता के अधिकारों की रक्षा करता है। स्त्री को जीवन भर गुलाम बनाए रखता है। परिवार का यह पिंजरा बहुत मजबूत है क्योंकि यह परम्परा रूढ़ि व आचार संहिता पर ही आधारित नहीं है, उसमें भावनाओं के टांके भी लगे हुए हैं जिसमें ममता लिहाज़ व शर्म तो फेविकोल की तरह है, जिन्हें हाथी भी शायद तोड़ने में सक्षम नहीं होता। जुड़ाव बुरा नहीं है बशर्ते वह कैद व बंधन न बने। 'परिवार से मुक्ति' स्त्री की जरूरत पर आधारित न होकर उसका अपने ऊपरहोने वाले अत्याचार व शोषण के प्रति विद्रोह है।" (अन्यथा जून 2008, पृ. 200)

भारतीय समाज में इन परिस्थितियों में दलित स्त्री की बचपन से ही ऐसी दिमागी कंडीशनिंग की जाती है कि दलित स्त्री सदैव अपने अधिकारों का अपनी सहज स्वाभाविक इच्छाओं का बलिदान करती आयी है। परिवार की मान मर्यादा की बलि वेदी पर अनेक बार खुद को स्वाहा करती आई है। जन्म से ही पराया धन मानकर उसकी शिक्षा भोजन स्वास्थ्य इत्यादि की उपेक्षा की जाती है। बुढ़ापे की लाठी तो बेटे हैं यह मान कर दलित परिवार अपने सीमित साधनों को बेटों पर व्यय करने को प्राथमिकता देते हैं।

बचपन से ही दलित स्त्री को इस तरह के संस्कार दिए जाते हैं। इस तरह के परिवेश में उनकी परवरिश होती है कि "उसका सुख परिवार के सुख से कुछ अलग है।" इस तथ्य तक से वह परिचित नहीं। दलित स्त्री चाहे वह किसी भी वर्ग की क्यों न हो स्व का विस्तार उसके पति बच्चों माँ बाप भाई बहनों तक खिंच गया है। स्वयं की स्वतंत्रता व उन्नति की उसके लिए कोई अवधारणा नहीं। स्त्री विवाहित है तो पति बच्चों की सुख समृद्धि में ही अपना सुख खोजती है और आजीवन अपनी समस्त ऊर्जा व शक्ति अपने इस परिवार के सरंजामों में खर्च कर देती है।

दलित स्त्री परिवार की चरमराती अर्थव्यवस्था में सहयोग देने के लिए घर से बाहर निकलती है। खेतों में मजदूरी करती है, शहरों में घरेलू बाई का कार्य करती है या समय पर मिलने वाली कोई भी मजदूरी करती है। पर एवज में मिलने वाली राशि परिवार पर ही खर्च होती है। यहाँ पर यह महत्त्वपूर्ण है कि घर से बाहर उपार्जन करने पर भी घरेलू कार्यों से उसे मुक्ति नहीं।

वह भी साथ-साथ अकेले ही निपटाने होते हैं। इनके साथ दलित पुरुष की सामंती मनोवृत्ति, वर्चस्ववाद, व घरेलू हिंसा का सामना भी उसे करना पड़ता है। इति यहीं पर नहीं है कार्य के सिलसिले में बाहर निकलने पर गैरदलित पुरुषों के बहुआयामी उत्पीड़न का शिकार उसे बनना पड़ता है। इतना सब कुछ उसके तनमन को तोड़ने के लिए पर्याप्त है।

अपवादस्वरूप कुछ स्त्रियाँ यदि सामाजिक मान्यताओं को नहीं मानती तो अवमानना व सामाजिक बहिष्कार के नुकीले दंशों से सैकड़ों बार तार-तार होती हैं। साथ ही वृद्धावस्था में वह अनेक किस्म की असुरक्षाओं से स्वयं को घिरा पाती है।

सामाजिक पारिवारिक संबंधों व दायित्वों के संदर्भ में पश्चिमी महिला की स्थिति व भारतीय दलित महिला की स्थिति भिन्न है। वहाँ की सरकारें नागरिकों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन ज्यादा पारदर्शी व सटीक तरीके से कर रही हैं। व्यक्ति के संदर्भ में शासन वहाँ एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बालपन से वृद्धावस्था तक व्यक्ति की जिम्मेदारी वहाँ सरकार की है। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य को वहाँ महत्ता प्रदान की जाती है। व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति वहाँ अपेक्षाकृत सीमित दायित्व है। वहाँ जबरन किसी के ऊपर कुछ थोपा नहीं जाता। भारत में व्यक्ति के सामाजिक दायित्व इतने हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विषय में सोचने का अवसर ही नहीं है।

'पश्चिमी समाज के व्यवस्थागत ढाँचे में कोई स्त्री अपनी इच्छानुरूप जिन्दगी जीना चाहे तो अपेक्षाकृत यहाँ की तुलना में जी सकती है क्योंकि उसकी सामाजिक पारिवारिक जिम्मेदारियाँ सीमित हैं। पश्चिमी समाज यौन स्वतंत्रता के मामले में भी खुला है। स्त्री-पुरुष परस्पर रजामंदी से संबंध बना सकते हैं व तोड़ भी सकते हैं किंतु भारत में दलित स्त्री खुलेआम परपुरुष से संबंध नहीं बना सकती, बनाती है तो बहुत बार इज्जत के नाम पर मौत के घाट उतारी जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री की दशा में सुधार के लिए अनेक कानून बने हैं। जैसे सम्पत्ति का अधिकार, छुआछूत विरोधी कानून, घरेलू हिंसा विरोधी कानून, दहेज विरोधी कानून, शिक्षा का अधिकार इत्यादि। पर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं कुव्यवस्था के कारण समाज के दलित व निम्न दबकों को बहुत कम प्रतिशत में इनका लाभ मिल पाया है। दलित महिलाएँ बहुत कम अंशों में शिक्षित हो पाती हैं व अशिक्षित रह जाने के कारण न तो वह अपनी नारकीय स्थिति को ही समझ पाती हैं न अपने शोषकों को पहचान अपनी स्थिति में सुधार के लिए कुछ कर पाती हैं। केवल नियति या भाग्य मान सिसक-सिसक कर रोते हुए अपना जीवन बिता देती हैं।

दलित स्त्रियों की समानता व स्वतंत्रता के इस संदर्भ में बजरंगबिहारी तिवारी का मानना है कि "दलित स्त्री के दोहरे श्रम का मूल्य आंका जाए, घरेलू हिंसा को रचना का विषय बनाया जाए, पितृसत्ता के दलित संस्करण पर बहस हो और उनकी मुक्ति के सवाल को प्राथमिक सवाल बनाया जाए।" (17, 18, 19 जनवरी 08, औरंगाबाद में पठित आलेख)

निःसंदेश इन सभी मुद्दों पर व्यापक और मुखर बहस अपेक्षित है। तभी दलित स्त्री के स्वातंत्र्य के संदर्भ में कुछ आशातीत परिणामों की अपेक्षा की जा सकती है।

यहाँ पर मैं यह भी कहना चाहूँगी कि मान, सम्मान एव जीवन जीने के बुनियादी साधनों के साथ बहुत कम दलित स्त्रियाँ ही चेतना सम्पन्न हो पायी हैं जिसकी आहट साहित्य के माध्यम से सुनी जा सकती है। प्रसिद्ध दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे 'परिवर्तन जरूरी है' नामक अपने लेख में कहती हैं कि "परिवर्तन न केवल बाह्य जगत में जरूरी है अपितु नारी जाति की मानसिकता उसकी सोच में बदलाव भी नारी जाति के उत्थान के लिए जरूरी है.... दलित नारी को जिस व्यवस्था ने गुलाम बनाया है उस व्यवस्था, उन मूल्यों के प्रति उसके मन में बगावत की भावना नहीं है।"

जाति व पितृसत्ता से मुक्ति के अपने वृहद्तर उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दलित स्त्रियों को संगठित, शिक्षित व आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनना पड़ेगा। अल्पना मिश्र के अनुसार स्त्री मुक्ति में शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद दिमागी कंडीशनिंग से मुक्त हुए बिना आजादी की समझ विकसित नहीं हो सकती। आजादी की यह समझ विवेक बुद्धि के साथ जुड़ती है जो निर्णयात्मक पहल तक ले जाती है। यह विवेक बुद्धि सही गलत में अंतर करना सिखाती है। (हंस, अगस्त 2009, पृ. 88)

डी-160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कालोनी, गाजियाबाद, उ.प्र.